श्रीमद् आचार्य नेमिचन्द्र
सिद्धान्तचक्रवर्ति विरचित

लब्धिसार

प्रथमोपशम सम्यक्त्व अधिकार

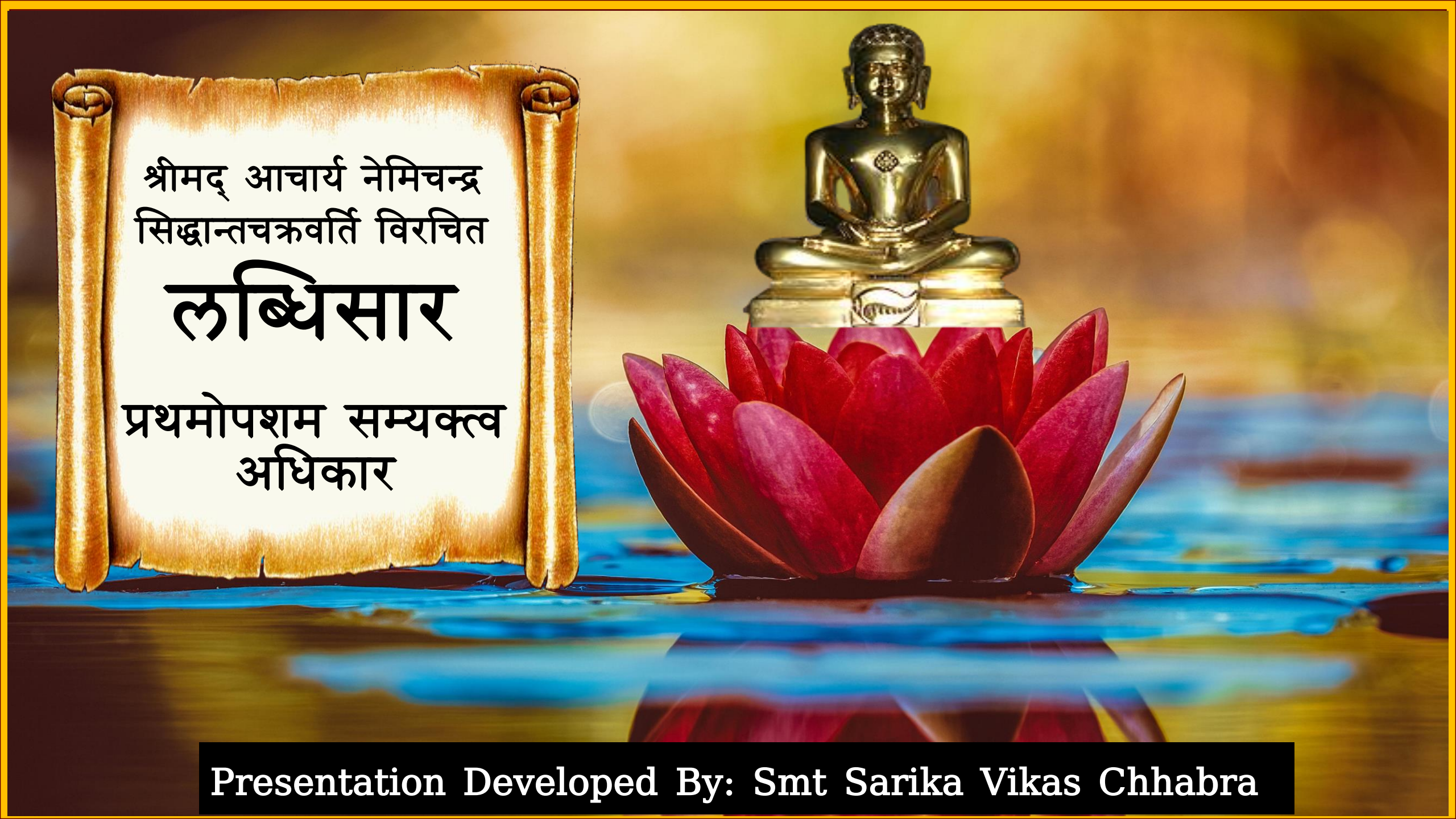

Presentation Developed By: Smt Sarika Vikas Chhabra

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे, आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥1॥

ग्रन्थ प्रारंभ करने से पहले इनका व्याख्यान आवश्यक है

नाम	• श्री लब्धिसार
कर्ता	• मूल कर्ता – सर्वज्ञ देव • उत्तर कर्ता – आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती
प्रमाण	• 6 अधिकार
निमित्त	• राजा चामुण्डराय
हेतु	• साक्षात् – अज्ञान निवृत्ति • परम्परा – अभ्युदय, नि:श्रेयस की प्राप्ति
मंगल	• पञ्च परमेष्ठी को नमस्कार

www.jainkosh.org

जयन्त्यन्वहमर्हन्तः सिद्धाः सूर्युपदेशकाः ।
साधवो भव्यलोकस्य शरणोत्तममङ्गलम् ॥1॥
श्रीनागार्यतनूजातशान्तिनाथोपरोधतः ।
वृत्तिर्भव्यप्रबोधाय लब्धिसारस्य कथ्यते ॥2॥

- अन्वयार्थ - जो (भव्यलोकस्य) भव्य जीवों के लिए (शरणोत्तममंगलम्) शरण, उत्तम और मंगलस्वरूप हैं, वे (अर्हन्तः, सिद्धाः, सूर्युपदेशकाः, साधवः) अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु (अन्वहम्) प्रतिदिन अर्थात् सदैव (जयन्ति) जयवन्त हो अर्थात् सर्वोत्कृष्टरूप से विराजमान रहे॥1॥
- श्लोकार्थ - (श्री नागार्यतनूजातशान्तिनाथोपरोधतः) श्री नागार्यपुत्र शांतिनाथ के अनुरोधवश (भव्यप्रबोधाय) भव्य जीवों को उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए (लब्धिसारस्य) लब्धिसार ग्रन्थ की (वृत्तिः) टीका (कथ्यते) कही जाती है (लिखी जाती है ।)

www.JainKosh.org

लब्धिसार की रचना का आधार

षट्खण्डागम के अन्तर्गत जीवस्थान खण्ड के चूलिका नामक अर्थाधिकार की ८वीं चूलिका

कषायप्राभृत के अन्त के ६ अर्थाधिकार

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे, आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥1॥

• अन्वयार्थः मैं (नेमिचन्द्राचार्य) (सिद्धे) सिद्धों को (जिणिंदचंदे) जिनेन्द्रचंद्र अर्थात् अरिहन्तों को (आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे) आचार्य, उपाध्याय व साधुओं को (वंदिय) नमस्कार करके (सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं) सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र लब्धि का (परूवेमो) वर्णन करता हूँ ॥1॥

www.JainKosh.org

मंगल एवं प्रतिज्ञा

अरिहन्त
- संपूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाले और आनन्द देने वाले होने से अरिहन्त चन्द्रमा के समान हैं

सिद्ध
- कृतकृत्य और अपनी आत्मा को जिसने प्राप्त किया है

आचार्य
- पंचाचारों का प्रवर्तन करने में तत्पर

उपाध्याय
- जिसके पास जाकर भव्य जीव विनय से अध्ययन करते हैं

साधु
- मोक्षमार्ग की साधना-आराधना करने वाले देशान्तर, कालान्तरवर्ती अथवा गुरुकुल के भेद से भिन्न

इन सभी के समूहों को वंदन करके लब्धिसार ग्रन्थ कहने की नेमिचन्द्र आचार्य ने प्रतिज्ञा की है ।

सिद्ध भगवान	आठ कर्मों से रहित व आठ गुणों से युक्त होते हैं ।
अरिहंत भगवान	घातिया कर्म ४७, आयु कर्म की ३ और नामकर्म की १३ – इस प्रकार ६३ प्रकृतियों से रहित, १८ दोषों से रहित, १००८ लक्षणों से युक्त, १८००० शीलों के स्वामी तथा ४६ गुणों से सहित होते हैं ।
आचार्य	१२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक, ३ गुप्ति – इसप्रकार ३६ गुणों से सहित होते हैं ।
उपाध्याय	११ अंग व १४ पूर्व के पाठी होते हैं तथा वे श्रुत के धारक दूसरों को पढ़ाते हैं ।
साधु	२८ मूलगुणों का पालन करते हैं ।

www.JainKosh.org

चदुगदिमिच्छो सण्णी, पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो ।
पढमुवसम्मं गेण्हदि, पंचमवरलद्धिचरिमम्हि ॥2॥

- अन्वयार्थ : (चदुगदिमिच्छो) चारों गतियों का मिथ्यादृष्टि (सण्णी) संज्ञी (पुण्णो) पर्याप्त (गब्भज) गर्भज (विसुद्ध) मंदकषायी (सागारो) साकारोपयोगी जीव (पंचमवरलब्धिचरिमम्हि) पाँचवी करणलब्धि के उत्कृष्ट अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम के अंतिम समय में (पढमुवसम्मं) प्रथमोपशम सम्यक्त्व को (गेण्हदि) ग्रहण करता है ॥2॥

www.JainKosh.org

कौन प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है?

चारों गतियों में उत्पन्न होने वाला अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीव

तिर्यंचगति में संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्यगति में पर्याप्तक गर्भज जीव

चारों गतियों का विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव

क्षयोपशम लब्धि के प्रथम समय से प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि की वृद्धि करने वाला

साकार अर्थात् ज्ञानोपयोगी

भव्य

शुभ लेश्यावाला

जागृत

ऐसा जीव पाँचवीं करणलब्धि का उत्कृष्ट भाग याने अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम, उसके अंतिम समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है ।

किस पद से किसका निषेध होता है – इसका हेतुसहित वर्णन

पद	प्रतिषेध	हेतु
मिथ्यादृष्टि	सासादन, मिश्र	प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूप परिणमन होने की शक्ति का अभाव है ।
	वेदक-सम्यग्दृष्टि	इस जीव ने पहले ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया है ।
संज्ञी	असंज्ञी	मन के बिना विशिष्ट ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती है ।
पर्याप्त	अपर्याप्त	अपर्याप्तक जीवों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने का विरोध है ।
पंचेन्द्रिय	एकेन्द्रिय से चतुरिंद्रिय-पर्यंत जीव	सम्यक्त्व ग्रहण करने योग्य परिणाम एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में नहीं हो सकते हैं ।
गर्भज	सम्मूर्च्छन	सम्मूर्च्छन जीवों के प्रथमोपशम सम्यक्त्व की योग्यता नहीं है ।
विशुद्ध	संक्लेशसहित	विशुद्धि के बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता ।
साकार	अनाकार	अनाकार उपयोग में गुण-दोषों का विचार नहीं होता है ।

उपशम सम्यक्त्व

१) प्रथमोपशम सम्यक्त्व

२) द्वितीयोपशम सम्यक्त्व

www.JainKosh.org

प्रथमोपशम सम्यक्त्व

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों के अथवा

सम्यक्त्व के बिना छह प्रकृतियों के अथवा

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के बिना शेष पाँच प्रकृतियों के

उपशम होने से मिथ्यात्व गुणस्थान में से चौथे, पाँचवें, सातवें गुणस्थान में जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व

सातवें गुणस्थान में

उपशम श्रेणी चढ़ने के सम्मुख अवस्था में

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है

उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

www.jainkosh.org

अनादि मिथ्यादृष्टि

- जिस मिथ्यादृष्टि भव्य जीव ने आज तक आत्मानुभव करके सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है वह अनादि मिथ्यादृष्टि है ।

सादि मिथ्यादृष्टि

- जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया और बाद में उसका सम्यक्त्व छूट गया ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव सादि मिथ्यादृष्टि है ।

www.JainKosh.org

विशेष

जिस अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव का संसार में रहने का काल अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण शेष रहता है, वह उक्त काल के प्रथम समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के योग्य अन्य सामग्री के सद्भाव में उसे ग्रहण कर सकता है ।

उस समय उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नियम से होती है, ऐसा कोई नियम नहीं है ।

मुक्त होने के पूर्व इस काल के मध्य में कभी भी वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है ।

www.JainKosh.org

चार गतियों में सम्यक्त्व के बाह्य निमित्त

सभी द्वीप और समुद्रों में रहने वाले गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और ढाई द्वीप व दोनों समुद्रों मे रहने वाले गर्भज पर्याप्त मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकते हैं।

गति		सम्यग्दर्शन के निमित्तकारण
मनुष्यगति		१. जातिस्मरण २. देवदर्शन ३. धर्मश्रवण
तिर्यंचगति		1. जातिस्मरण 2. देवदर्शन 3. धर्मश्रवण
नरकगति	१ ले ३ रे नरकपर्यंत	१. जातिस्मरण २.देवदर्शन ३. धर्मश्रवण
	४ से ७ वें नरकपर्यंत	१. वेदनानुभव २. जातिस्मरण
देवगति	भवनत्रिक	१. जातिस्मरण २. धर्मश्रवण ३. देवर्द्धिदर्शन ४. जिनकल्याणकदर्शन
	१ ले १२ वें कल्प	१. जातिस्मरण २. धर्मश्रवण ३. देवर्द्धिदर्शन ४. जिनकल्याणकदर्शन
	१२ वें १६ वें कल्प	१. जातिस्मरण २. धर्मश्रवण ३. जिनकल्याणकदर्शन
	९ ग्रैवेयक	१. जातिस्मरण २. धर्मश्रवण
	अनुदिश और अनुत्तर	यहाँ सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं ।

www.JainKosh.org

शंका - त्रस जीवों से रहित असंख्यात समुद्रों में तिर्यंच प्रथमोपशम सम्यक्त्व को कैसे उत्पन्न कर सकते हैं ?

समाधान - उन असंख्यात समुद्रों में बैरी देवों के द्वारा लाये गये तिर्यंचो में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति देखी जाती है ।

www.JainKosh.org

खयउवसमियविसोही, देसणपाउग्गकरणलद्धी य।
चत्तारि वि सामण्णा, करणं सम्मत्तचारित्ते ॥3॥

- अन्वयार्थ - (खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य) क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण – ये पाँच लब्धियाँ हैं ।
- उनमें से (चत्तारि वि) प्रथम चार लब्धियाँ (सामण्णा) सामान्य हैं।
- (करणं) करणलब्धि मात्र (सम्मत्तचारिते) सम्यक्त्व व चारित्र प्राप्त होते समय होती है ।

www.JainKosh.org

इनमें से प्रथम चार लब्धियाँ सामान्य से भव्य और अभव्य दोनों को ही होती हैं ।

परंतु करणलब्धि केवल भव्यजीवों को सम्यक्त्व और चारित्र के प्राप्त होते समय ही होती है ।

www.JainKosh.org

कम्ममलपडलसत्ती, पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ।
होदूणुदीरदि जदा, तदा खओवसमलद्धी दु ॥4॥

- अन्वयार्थ— (जदा) जब (कम्ममलपडलसत्ती) अप्रशस्त कर्मसमूह की शक्ति (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (अणंतगुणविहीणकमा) क्रम से अनन्त गुणहीन (होदूण) होकर (उदीरदि) उदय में आती है (तदा) तब (खओवसमलदी दु) क्षयोपशम लब्धि होती है ।

www.JainKosh.org

क्षयोपशम लब्धि

जब कर्मों में मलरूप अप्रशस्त ज्ञानावरणादि कर्मों के समूह का अनुभाग

अनन्त गुणा हीन होकर अर्थात् अनन्तवाँ एक भागप्रमाण होकर क्रम से उदय में आता है

तब उस कर्म के अनुभाग की अनन्त बहुभागप्रमाण हानि होती है

वह क्षयोपशम लब्धि है ।

बंध

शरीर नामकर्म के उदय से और योग के निमित्त से

कार्मण वर्गणारूप से आये हुए पुद्गल स्कंध

मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिरूप होकर

आत्मा के प्रदेशों में परस्पर प्रवेश करते हैं

उसे बंध कहते हैं ।

बन्ध के प्रकार

प्रकृति बन्ध	स्थिति बन्ध	अनुभाग बन्ध	प्रदेश बन्ध
मूल-उत्तर प्रकृतियों का यथायोग्य जीव से संबन्ध होना	बंधी प्रकृतियों का जीव से संबन्धरूप रहने का काल	प्रकृतियों में फल देने की शक्ति	प्रकृतिरूप परिणत पुद्गल परमाणुओं का प्रमाण

जैसे —

आम की प्रकृति	आम की स्थिति	आम का अनुभाग	आम के प्रदेश
मीठा	5 - 7 दिन	कितना अधिक मीठा, स्वादिष्ट	सैकड़ों स्कंध या अनेकों Slices

वैसे —

मतिज्ञानावरण की प्रकृति	मतिज्ञानावरण की स्थिति	मतिज्ञानावरण का अनुभाग	मतिज्ञानावरण के प्रदेश
मतिज्ञान को आवृत्त करने की है ।	अधिकतम 30 कोड़ाकोड़ी सागर	लता, दारु, अस्थि, शैल रूप	मतिज्ञानावरणरूप परिणत कर्म-परमाणुओं की संख्या

क्षयोपशम लब्धि और विशुद्धि लब्धि में अंतर

क्षयोपशम लब्धि में यथायोग्य घाति और अघाति सभी अप्रशस्त कर्मों संबंधी अनुभाग शक्ति की प्रत्येक समय में अनन्तगुणी हानि होना अपेक्षित है ।

परन्तु जीव की विशुद्धि लब्धि के निमित्त से सातादि परावर्तनमान प्रकृतियों की बंध-योग्य ही विशुद्धि होती है । असाता आदि के बंधयोग्य संक्लेश परिणाम होते नहीं, ऐसा यहाँ समझना चाहिए।

www.JainKosh.org

क्षयोपशम और क्षयोपशम-लब्धि में अन्तर

क्षयोपशम

- यह केवल देशघाति प्रकृति में ही पाया जाता है ।
- इसमें देशघाति कर्मों का जितना अनुभाग है उतना ही उदय होता है ।
- यह निरन्तर विद्यमान रहता है, निद्रावस्था और बेहोशी में भी बना रहता है
- मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति है । इसका क्षयोपशम मिथ्यात्व गुणस्थान में संभव नहीं है ।

क्षयोपशम-लब्धि

- क्षयोपशम-लब्धि में प्रत्येक समय में अनुभाग का अनन्त गुणा घटना यह कार्य सभी घातिकर्मों और अघाति कर्मों की अप्रशस्त प्रकृतियों में होता रहता है ।
- इसमें प्रत्येक समय में अनन्तवाँ भाग होकर उदय होता रहता है ।
- केवल अंतर्मुहूर्त पर्यंत ही रहती है, वह भी जागृत अवस्था में ही रहती है ।
- इसमें मिथ्यात्व का अनुभाग अनन्तगुणा घटता जाता है तब भी उसे मिथ्यात्व कर्म का क्षयोपशम नहीं कहते हैं ।

www.JainKosh.org

आदिमलद्धिभवो जो, भावो जीवस्स सादपहुदीणं ।
सत्थाणं पयडीणं, बंधणजोगो विसोहिलद्धी सो ॥5॥

- अन्वयार्थ— (आदिमलदिभवो) प्रथम क्षयोपशम-लब्धि के उत्पन्न होने पर (सादपहुदीणं सत्थाणं पयडीणं) सातादिक प्रशस्त प्रकृतियों के (बंधणजोगो) बंध के योग्य (जो) जो (जीवस्स) जीव का (भावो) परिणाम है (सो) वह (विसोहीलब्धि) विशुद्धि लब्धि है ।

www.JainKosh.org

विशुद्धि लब्धि

पूर्व में कही गयी क्षयोपशम-लब्धि होने पर

मिथ्यादृष्टि जीव के सातादि प्रशस्त प्रकृतियों के बन्ध के कारणभूत

जो धर्मानुरागरूप शुभ भाव होते हैं

उन परिणामों की प्राप्ति को विशुद्धि-लब्धि कहते हैं ।

www.JainKosh.org

छद्दव्वणवपयत्थो-पदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो ।
देसिदपदत्थधारण-लाहो वा तदियलद्धी दु ॥6॥

- अन्वयार्थ— (जो) जो (छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयरसूरिपहुदिलाहो) छह द्रव्य, नौ पदार्थों के उपदेश करने वाले आचार्यादिकों का लाभ (वा) अथवा (देसिदपदत्थधारणलाहो) उपदेशित पदार्थ के धारणा की प्राप्ति होना (तदियलद्धी) वह तीसरी देशना लब्धि है ।

www.JainKosh.org

देशना लब्धि

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये छह द्रव्य हैं। पंचास्तिकाय इनमें अंतर्भूत हैं।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ये नौ पदार्थ हैं। सात तत्त्व इनमें गर्भित हैं।

उनका उपदेश करने वाले आचार्य, उपाध्याय आदिक की प्राप्ति होना देशनालब्धि है ।

अथवा दीर्घ भूतकाल में उपदेशित पदार्थों की धारणा होना देशना लब्धि है ।

अंतोकोडाकोडी, विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ।
पाउग्गलद्धिणामा, भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥7॥

- अन्वयार्थ— (जं) जो (ठिदिरसाण) स्थिति व अनुभाग को (अंतोकोडाकोडी विट्ठाण करणं) अंत:कोड़ाकोड़ी व द्विस्थानीय करती है (पाउग्गलद्धिणामा) वह प्रायोग्यलब्धि है अर्थात् कर्मों की स्थिति अंत:कोड़ाकोड़ी करती है और चतु:स्थानगत अनुभाग को द्विस्थानरूप करती है ।
- (भव्वाभव्वेसु) यह लब्धि भव्य व अभव्य जीवों को (सामण्णा) सामान्यरूप से होती है ।

www.JainKosh.org

प्रायोग्य लब्धि

पूर्व में कही गयी तीन लब्धियों से सम्पन्न कोई एक जीव प्रत्येक समय में विशुद्ध होता हुआ आयु को छोड़कर बाकी सात कर्मों की वर्तमान स्थिति को एक स्थितिकाण्डकघात के द्वारा छेदकर उस कांडक के द्रव्य को अवशेष रही अंत:कोटाकोटीमात्र स्थिति में निक्षेपण करता है ।

अप्रशस्त प्रकृतियों के पूर्व के अनुभाग को अनन्त का भाग देकर बहुभागमात्र अनुभाग का खण्डन करके अवशेष रहे एक भागरूप अनुभाग में निक्षेपण करता है ।

घातिया कर्मों का अनुभाग निम्ब-कांजीररूप द्विस्थानगत शेष रह जाता है ।

इस कार्य करने की योग्यता की प्राप्ति होने को प्रायोग्यता लब्धि जानना चाहिए ।

अंत:कोटाकोटी

एक कोटि (करोड़) को एक कोटि से गुणा करने पर जो संख्या आती है उससे कम और एक कोटि के ऊपर

जो संख्या है उसे अंतःकोटाकोटी कहते हैं ।

www.JainKosh.org

जेट्ठवरट्ठिदिबंधे, जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य ।
ण य पडिवज्जदि पढमुव-समसम्मं मिच्छजीवो हु ॥8॥

- अन्वयार्थ— (जेट्ठवरट्ठिदिबंधे) उत्कृष्ट व जघन्य स्थितिबंध होने पर (य) और (जेट्ठवरहिदितियाण सत्ते) उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति, अनुभाग व प्रदेश सत्त्व होने पर (हु) निश्चय से (मिच्छजीवो) मिथ्यादृष्टि जीव (पढमुवसमसम्मं) प्रथमोपशम सम्यक्त्व को (ण य पडिवज्जदि) प्राप्त नहीं होता है ।

www.JainKosh.org

प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहण की अयोग्यता

सबसे अधिक संक्लेश परिणामी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव को संभवने वाला उत्कृष्ट स्थिति-बंध होने पर,

सबसे अधिक विशुद्ध परिणामी क्षपक जीव को पाया जाने वाला जघन्य स्थितिबंध होने पर,

सबसे अधिक संक्लेश परिणामी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव के संभव उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग प्रदेशसत्त्व होने पर और

सर्वविशुद्ध क्षपक जीव के संभव जघन्य स्थिति, अनुभाग व प्रदेश सत्त्व होने पर जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण नहीं करता है ।

प्रदेश सत्त्व के स्वामी

कर्मप्रकृति	बंध व सत्त्व का भेद	स्वामी
आयु बिना ७ कर्म	उत्कृष्ट स्थितिबंध	उत्कृष्ट संक्लेश परिणामी अथवा ईषत् मध्यम संक्लेश परिणामी पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि
मोहनीय व आयु बिना शेष ६ कर्म	जघन्य स्थितिबंध	अंतिम बंध में अवस्थित सूक्ष्म साम्परायिक क्षपक जीव
मोहनीय	जघन्य स्थितिबंध	अंतिम बंध में स्थित अनिवृत्तिकरण क्षपक जीव
आयु बिना शेष ७ कर्म	उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व	उत्कृष्ट स्थितिबंध जिसने किया है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव
मोहनीय	जघन्य स्थितिसत्त्व	अंतिम समयवर्ती सूक्ष्म साम्पराय क्षपक जीव
मोहनीय	जघन्य अनुभागसत्त्व	अंतिम समयवर्ती सूक्ष्म साम्पराय क्षपक जीव
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय	जघन्य स्थितिसत्त्व	क्षीणमोह गुणस्थान अंतिम समयवर्ती जीव
	जघन्य अनुभागसत्त्व	क्षीणमोह गुणस्थान अंतिम समयवर्ती जीव
चार अघाति कर्म	जघन्य स्थितिसत्त्व	अयोगकेवली गुणस्थान का अंतिम समयवर्ती जीव
७ कर्म (आयु बिना)	उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व	उत्कृष्ट अनुभागकंध करके जब तक अनुभाग का घात नहीं करता तब तक वह जीव
७ कर्म (आयु बिना)	उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व	गुणित कर्मांशिक सातवें नरक का अन्तिम समयवर्ती नारकी जीव
मोहनीय	जघन्य प्रदेशसत्त्व	क्षपितकर्मांशिक दसवें गुणस्थान का अंतिम समयवर्ती जीव
घातिकर्म	जघन्य प्रदेशसत्त्व	क्षपितकर्मांशिक बारहवें गुणस्थान का अंतिम समयवर्ती जीव

सम्मत्तहिमुहमिच्छो, विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु ।
अंतोकोडाकोडिं, सत्तण्हं बंधणं कुणइ ॥9॥

- अन्वयार्थ— (सम्मत्तहिमुहमिच्छो) प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव (हु) निश्चय से (विसोहिवड्ढीहि) विशुद्धि की वृद्धि से (वड्ढमाणो) बढ़ने वाला अर्थात् वर्धमान विशुद्धि वाला (सत्तण्हं) सात कर्मों का (अंतकोडाकोडिं) अंत:कोटाकोटि सागरप्रमाण (बंधण) स्थितिबंध (कुणइ) करता है ।

www.JainKosh.org

प्रायोग्यता लब्धि में स्थिति-बंध

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव

प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि की वृद्धि से बढ़ता हुआ

प्रायोग्यता-लब्धि काल के प्रथम समय से

आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का स्थितिबंध

पूर्व के स्थितिबंध का संख्यातवाँ भागमात्र अर्थात् अन्त:कोटाकोटी सागर प्रमाण बांधता है ।

तत्तो उदधिसदस्स य, पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय ।
बंधम्मि पयडिबंधुच्छेदपदा होंति चोत्तीसा ॥10॥

- अन्वयार्थ— (तत्तो) उसके अनन्तर अर्थात् अन्तःकोटीकोटी मात्र स्थितिबंध प्रारम्भ करने के अनन्तर (उदहिसदस्स य पुधत्तमेत्तं) 100 सागर पृथक्त्वमात्र (पुणो पुणोदरिय) पुनः-पुनः स्थितिबंधापसरण जाकर (बंधम्मि) बंध में (चोत्तीसा पयडिबंधुच्छेदपदा) प्रकृतिबंध के चौंतीस व्युच्छित्ति स्थान (होंति) होते हैं ।

www.JainKosh.org

प्रकृति-बंधापसरण

प्रकृतिबंध का न होना प्रकृतिबंधापसरण कहलाता है ।

- पुधत्त-पृथक्त्व शब्द बहुलतावाची है । तीन से अधिक और नौ से कम संख्या के लिए पृथक्त्व शब्द का प्रयोग किया जाता है । यहाँ पृथक्त्व शब्द का अर्थ 700-800 दिया है ।
- उदाहरण - प्रथम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिबंध एक लाख (1,00,000) वर्ष माना। पल्योपम का संख्यातवाँ भाग पाँच (5) वर्ष, पल्य का प्रमाण 25 वर्ष, सागरोपम का प्रमाण सौ (100) वर्ष, सागरोपम पृथक्त्व का प्रमाण सात सौ (700) वर्ष माना और अंतर्मुहूर्त का प्रमाण चार समय माना है ।

www.JainKosh.org

स्थिति बंधापसरण व प्रकृति बंधापसरण का क्रम

बंधापरसरण क्रमांक	समय क्र.	काल्पनिक स्थितिबंध	वास्तविक स्थितिबंध
दूसरा प्रकृतिबंधापसरण	११२१ से ११२४	९८,६०० वर्ष	७-८ सौ सागर कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	०		
	०		
प्रथम प्रकृतिबंधापसरण	५६१ से ५६४	९९,३०० वर्ष	७-८ सौ सागर कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	०		
	०		
इकतालीसवां स्थितिबंधापसरण	१६१ से १६४	९९,८०० वर्ष	२ सागर कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	०		
	०		
इक्कीसवां स्थितिबंधापसरण	८१ से ८४	९९,९०० वर्ष	१ सागर कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	०		
	०		
ग्यारहवां स्थितिबंधापसरण	४१ से ४४	९९,९५० वर्ष	२ पल्य कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	०		
	०		
छठा स्थितिबंधापसरण	२१ से २४	९९,९७५ वर्ष	१ पल्य कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	०		
	०		
तीसरा स्थितिबंधापसरण	९ से १२	९९,९९० वर्ष	पल्य का संख्यातवां भाग कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
दूसरा स्थितिबंधापसरण	५ से ८	९९,९९५ वर्ष	पल्य का संख्यातवां भाग कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
प्रथम स्थितिबंधापसरण	१ से ४	१,००,०००	अंत:कोड़ाकोड़ी सागर

- प्रायोग्यलब्धि के प्रथम एक से चार समय तक एक लाख वर्ष स्थितिबंध किया।
- पाँचवें समय से 5 वर्ष कम 1 लाख अर्थात् 99,995 वर्ष स्थितिबंध किया। 6 ठे, 7 वें, 8 वें समय में स्थितिबंध उतना ही होता है । इसको एक स्थितिबंधापसरण कहते हैं।
- पुनः 9 वें समय से पूर्व स्थितिबंध से 5 वर्ष कम अर्थात् 99,990 स्थितिबंध किया। ऐसे प्रत्येक 4 समय में 5-5 वर्ष स्थितिबंध कम होता हुआ 25 वर्ष कम किया अर्थात् एक पल्य कम किया।
- पुनः 5-5 वर्ष कम होते हुये 50 वर्ष कम किया।
- पुनः 5-5 वर्ष कम होते हुए 100 वर्ष अर्थात् 1 सागर कम स्थितिबंध किया।

www.JainKosh.org

स्थितिबंधापसरण

उदाहरण- मानाकि प्रथम स्थिति-बंध = 100000 वर्ष; 1 स्थितिबंधापसरण = 5 वर्ष

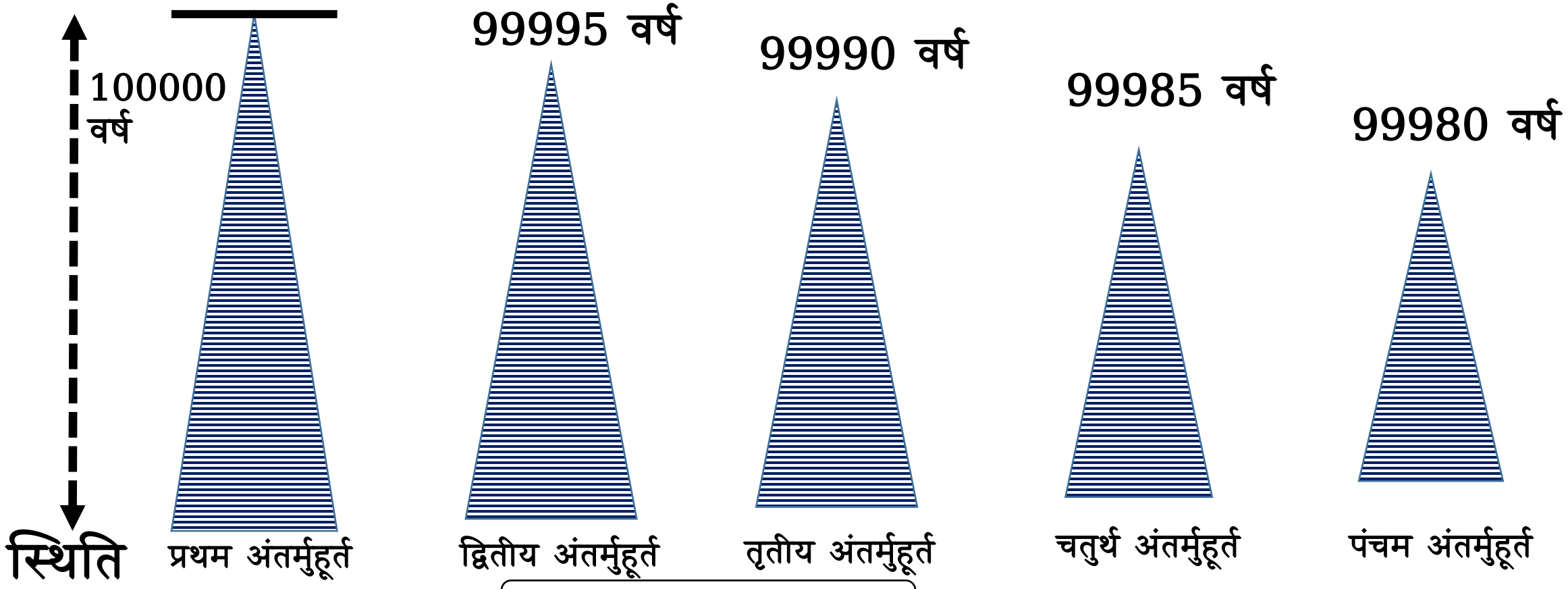

www.JainKosh.org

- इसप्रकार स्थितिबंध कम-कम होता हुआ 700 वर्ष कम अर्थात् 99,300 वर्ष प्रमाण स्थितिबंध किया। तब प्रथम प्रकृतिबंधापसरण हुआ अर्थात् 1 नरकायु की बंध-व्युच्छित्ति की।
- पुनः प्रत्येक स्थितिबंधापसरण के द्वारा 5-5 वर्ष कम होकर 700 वर्ष कम अर्थात् 98,600 वर्ष स्थितिबंध होने पर दूसरा प्रकृतिबंधापसरण होता है । इस प्रकार से 700-700 वर्ष अर्थात् सागरोपम शतपृथक्त्व कम स्थितिबंध होने पर एक-एक स्थितिबंधापसरण होता है ।
- 34 प्रकृतिबंधापसरण में कुल तेवीस हजार आठ सौ (700x34=23,800) वर्ष स्थितिबंध कम हुआ। इसी प्रकार वास्तविक गणित में समझना चाहिए ।

www.JainKosh.org

आउं पडि णिरयदुगे, सुहुमतिये सुहुमदोण्णि पत्तेयं ।
बादरजुद दोण्णि पदे, अपुण्णजुद वितिचसण्णिसण्णीसु ॥11॥

- अन्वयार्थ :- (आउं पडि) प्रत्येक आयु, (णिरयदुगे) नरकद्विक, (सुहुमतिय) सूक्ष्मत्रय, (सुहुमदोण्णि पत्तेय) सूक्ष्मादि दो और प्रत्येक, (बादरजुद दोण्णिपदे) बादरयुक्त पूर्वोक्त दो स्थान, (अपुण्णजुद वि-ति-चसण्णि सण्णीसु) अपर्याप्तयुक्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय (ऐसे क्रमशः 14 स्थान हैं ।) ॥11॥

www.JainKosh.org

प्रकृति-बंधापसरण के स्थान

पहला नरकायु का व्युच्छित्ति स्थान है ।

2रा स्थान तिर्यंचायु

3रा स्थान मनुष्यायु

4था स्थान देवायु

5वा स्थान नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी

6ठा स्थान संयुक्त रूप से सूक्ष्म-अपर्याप्तक-साधारण प्रकृति

7वाँ स्थान संयुक्त रूप से सूक्ष्म-अपर्याप्तक-प्रत्येक प्रकृति

प्रकृति-बंधापसरण के स्थान

8वाँ स्थान संयुक्त रूप से बादर-अपर्याप्त-साधारण प्रकृति

9वाँ स्थान संयुक्त रूप से बादर-अपर्याप्तक-प्रत्येक प्रकृति

10वाँ स्थान संयुक्त रूप से द्वीन्द्रिय जाति-अपर्याप्तक

11वाँ स्थान संयुक्त रूप से त्रीन्द्रिय जाति-अपर्याप्तक

12वाँ स्थान संयुक्त रूप से चतुरिन्द्रिय जाति-अपर्याप्तक

13वाँ स्थान संयुक्त रूप से असंज्ञी पंचेन्द्रिय जाति-अपर्याप्तक

14वाँ स्थान संयुक्त रूप से संज्ञी पंचेन्द्रिय जाति-अपर्याप्तक का है ।

बंध-व्युच्छित्ति का लक्षण

विवक्षित स्थान के अंतिम समयपर्यंत बंध होकर उसके अनन्तर समय में बंध न होना उसे बंध-व्युच्छित्ति कहते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में आयुबंध का अभाव है अत: यहाँ सर्व आयुओं की बंध-व्युच्छिति कही है ।

यहाँ संयुक्त रूप का अर्थ उन प्रकृतियों का एक साथ मिलकर यहाँ से बंध नहीं होता है परन्तु उनमें किसी प्रकृति का परिवर्तन होने पर यथासंभव इन प्रकृतियों में से किसी प्रकृति का आगे भी बंध होता है, ऐसा समझना चाहिए।

जैसे सातवें स्थान में सूक्ष्म, अपर्याप्त व प्रत्येक की संयुक्त रूप से बंध-व्युच्छित्ति हुई। इनमें से प्रत्येक प्रकृति का सूक्ष्म-अपर्याप्त के साथ बंध नहीं होगा, किंतु बादर और पर्याप्त के साथ आगे भी बंध होता है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए।

अट्ठ अपुण्णपदेसु वि, पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियपदे ।
एइंदिय आदावं, थावरणामं च मिलिदव्वं ॥12॥

- अन्वयार्थ :- (अट्ठ अपुण्णपदेसु वि) पूर्वोक्त आठ अपर्याप्त स्थानों में (पुण्णेण जुदेसु) पर्याप्त जोड़ने पर (आगे के आठ स्थान होते हैं ।) (तेसु तुरियपदे) उसमें से चौथे स्थान में (एइंदिय आदावं थावरणाम च) एकेन्द्रिय, आतप व स्थावर नामकर्म (मिलिदव्वं) मिलाना चाहिए अर्थात् पूर्वोक्त छठे स्थान से तेरहवें स्थान पर्यन्त आठ स्थानों में अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त जोड़ें एवं नौवें स्थान में एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृति अधिक जोड़ना चाहिए ।

www.JainKosh.org

प्रकृति-बंधापसरण के स्थान

15वाँ स्थान संयुक्तरूप से सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण का है ।

16वाँ स्थान संयुक्तरूप से सूक्ष्म-पर्याप्त-प्रत्येक का

17वाँ स्थान संयुक्त रूप से बादर-पर्याप्त-साधारण का

18वाँ स्थान संयुक्त रूप से बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-एकेन्द्रिय जाति-आतप-स्थावर का

19वाँ स्थान संयुक्त रूप से द्वीन्द्रिय-जाति-पर्याप्त का

20वाँ स्थान संयुक्त रूप से त्रीन्द्रिय-जाति-पर्याप्त का

21वाँ स्थान संयुक्त रूप से चतुरिन्द्रिय-जाति-पर्याप्त का

22वाँ स्थान असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-जाति-पर्याप्त का है ।

तिरियदुगुज्जोवे वि य, णीचे अपसत्थगमण दुभगतिए । हुंडासंपत्ते वि य, णउंसए वाम-खीलीए ॥13॥

- अन्वयार्थ : (तिरियदुगुज्जोवे वि य) तिर्यंचद्विक और उद्योत, (णीचे) नीचगोत्र, (अपसत्थगमण दुभगतिए) अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भगत्रिक (हुंडासंपत्ते वि य) हुंडक संस्थान और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, (णउंसए) नपुंसकवेद (वाम-खीलीए) वामन संस्थान और कीलित संहनन - इस प्रकार क्रमशः 6 व्युच्छित्ति स्थान हैं ।

www.JainKosh.org

23वाँ स्थान संयुक्तरूप से तिर्यंचगति, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी व उद्योत का है ।

24वाँ स्थान नीचगोत्र

25वाँ स्थान संयुक्तरूप से अप्रशस्त विहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय

26वाँ स्थान हुंडक संस्थान और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन

27वाँ स्थान नपुंसकवेद

28वाँ स्थान वामन संस्थान व कीलितसंहनन का है ।

प्रकृति-बंधापसरण के स्थान

खुजद्धं णाराए, इत्थीवेदे य सादिणाराए ।
णग्गोधवज्जणाराए मणुओरालदुगवज्जे ॥14॥

- अन्वयार्थ :- (खुज्जद्धं णाराए) कुब्जकसंस्थान-अर्द्धनाराचसंहनन, (इत्थीवेदे य) स्त्रीवेद, (सादिणाराए) स्वाति संस्थान व नाराच संहनन, (णग्गोधवज्जणाराए) न्यग्रोध संस्थान व वज्रनाराच संहनन (मणुओराल दुग-वज्जे) मनुष्यद्विक, औदारिक द्विक व वज्रवृषभनाराचसंहनन इस प्रकार 5 व्युच्छित्ति स्थान हैं ।

www.JainKosh.org

प्रकृति-बंधापसरण के स्थान

29वाँ स्थान कुब्जक संस्थान और अर्द्धनाराच संहनन का है ।

30वां स्थान स्त्रीवेद

31वाँ स्थान स्वाति संस्थान और नाराच संहनन

32वाँ स्थान न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान और वज्रनाराचसंहनन

33वाँ स्थान संयुक्त रूप से मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन का है ।

अथिरअसुभजस-अरदी, सोय-असादे य होंति चोत्तीसा ।
बंधोसरणट्ठाणा, भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥15॥

- अन्वयार्थ :- (अथिरअसुभजस अरदी सोय असादे य) अस्थिर, अशुभ, अयश, अरति, शोक, असाता यह चौंतीसवाँ स्थान है ।
- इस प्रकार (चोत्तीसा बंधोसरणट्ठाणा) चौंतीस बंधापसरण स्थान (भव्वाभव्वेसु) भव्य और अभव्यों में (सामण्णा) सामान्यरूप से (दोनों को) (होंति) होते हैं ।

www.JainKosh.org

प्रकृति-बंधापसरण के स्थान

34वाँ संयुक्तरूप से अस्थिर-अशुभ-अयश-अरति-शोक-असाता प्रकृतियों का बंध-व्युच्छित्ति स्थान है ।

इस प्रकार चौंतीस ही प्रकृतिबन्धापसरण स्थान भव्य और अभव्य दोनों में समानरूप से होते हैं।

सभी प्रकृतिबंधापसरण स्थानों में सौ सागरोपम पृथक्त्व की हानि समानरूप से जानना चाहिए ।

www.JainKosh.org

णरतिरियाणं ओघो, भवणतिसोहम्मजुगलए विदियं । तदियं अट्ठारसमं, तेवीसदिमादि दसपदं चरिमं ॥16॥

- अन्वयार्थ :- (णर-तिरियाणं) मनुष्य व तिर्यंचों के (ओघो) ओघ के समान अर्थात् चौंतीस बन्धापसरण स्थान होते हैं ।
- (भवणतिसोहम्मजुगलए) भवनत्रिक और सौधर्म युगल में (विदियं) दूसरा (तदियं) तीसरा, (अट्ठारसम) अठारहवाँ, (तेवीसदिमादि दसपदं) तेवीसवें स्थान से लेकर दस स्थान और (चरिमं) अंतिम स्थान होता है ।

www.JainKosh.org

मनुष्यगति और तिर्यंचगति में प्रकृतिबंधापसरण

मनुष्यगति और तिर्यंचगति में

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख होने वाले मिथ्यादृष्टि के

सारे चौंतीस बन्धापसरण स्थान होते हैं

क्योंकि उसके बंधयोग्य 117 प्रकृतियों में से नरकायु आदि 46 प्रकृतियों का बन्धापसरण कहा है ।

ते चेव चोद्दसपदा, अट्ठारसमेण हीणया होंति।
रयणादिपुढविछक्के, सणक्कुमारादिदसकप्पे ॥17॥

- अन्वयार्थ :-(रयणादिपुढविछक्के) रत्नप्रभादि छह नरक पृथिवियों में और (सणक्कुमारादिदसकप्पे) सानत्कुमारादि दस स्वर्गों में (अट्ठारसमेण हीणया) अठारहवें स्थान से रहित (ते चेव चोद्दसपदा) वे ही अर्थात् सौधर्म युगल में पाये जाने वाले चौदह स्थान (होंति) होते हैं ।

www.JainKosh.org

नरकगति में प्रकृति-बंधापसरण

नरकगति में रत्नप्रभा से तम:प्रभा नरक तक छह पृथ्वियों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख होने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के पूर्व में कहे गए 14 स्थानों में से अठारहवें स्थान को कम करके शेष तेरह प्रकृतिबंधापसरण स्थान होते हैं ।

उनके बंधयोग्य सौ (100) प्रकृतियों में से 28 प्रकृतियों को कम करके शेष 72 प्रकृतियों का बंध होता है ।

www.JainKosh.org

देवगति में प्रकृति-बंधापसरण

इसी प्रकार देवगति में सानत्कुमार आदि सहस्रार पर्यन्त दस स्वर्गों में भी बंधापसरण स्थान, बंधव्युच्छिन्न प्रकृतियाँ और बंधनेवाली प्रकृतियाँ जाननी चाहिए ।

एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप ये तीन प्रकृतियाँ तीसरे स्वर्ग से लेकर आगे बंधयोग्य नहीं हैं। सौधर्म युगल की 31 प्रकृतियों में से ये 3 प्रकृतियाँ कम करने पर यहाँ 28 प्रकृतियों की बंध-व्युच्छित्ति होती है ।

www.jainkosh.org

ते तेरस विदिएण य, तेवीसदिमेण चावि परिहीणा ।
आणदकप्पादुवरिम-गेवेज्जंतोत्ति ओसरणा ॥18॥

- अन्वयार्थः- (आणदकप्पादुवरिमगेवेज्जंतोत्ति) आनत कल्प से उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त (विदिएण य) दूसरे और (तेवीसदिमेण चावि) तेवीसवें स्थान से (परिहीणा) हीन (ते तेरस) वे ही पूर्वोक्त तेरह (ओसरणा) बंधापसरण स्थान होते हैं ।

www.JainKosh.org

देवगति में प्रकृति-बंधापसरण

देवगति में आनत-प्राणतादि से उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत के विमान में रहने वाले प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि को विशुद्धिविशेष के कारण पूर्व गाथा में बताये हुये तेरह प्रकृति-बंधापसरण स्थानों में से दूसरे और तेईसवें स्थान को कम करके ग्यारह प्रकृतिबंधापसरण स्थान होते हैं।

उनमें अबध्यमान 24 प्रकृतियाँ हैं। आनतादि में बन्धयोग्य छियानबे (96) प्रकृतियों में से चौबीस (24) प्रकृतियाँ कम करने पर शेष बहत्तर (7२) प्रकृतियाँ बांधी जाती हैं।

www.jainkosh.org

ते चेवेक्कारपदा, तदिऊणा विदियठाणसंजुत्ता ।
चउवीसदिमेणूणा, सत्तमपुढविम्हि ओसरणा ॥19॥

- अन्वयार्थः- (सत्तमपुढविम्हि) सातवीं पृथ्वी में (तदिऊणा) तीसरे स्थान से कम (विदियठाणसंजुत्ता) और दूसरे स्थान से युक्त (चउवीसदिमेणूणा) चौवीसवें स्थान से रहित (ते चेवेक्कारपदा) पूर्व गाथा में कहे गए ग्यारह (ओसरणा) बंधापसरण स्थान हैं । (अर्थात् कुल दस स्थान हैं ।) ॥19॥

www.JainKosh.org

सातवीं पृथ्वी के नारकी के प्रकृति-बंधापसरण

नरकगति में सातवीं पृथ्वी में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख होने वाले मिथ्यादृष्टि के उन पूर्वोक्त ग्यारह प्रकृतिबंधापसरण स्थानों में से तीसरे स्थान से रहित और दूसरे स्थान से सहित तथा चौवीसवें स्थान से रहित दस स्थान होते हैं।

उनमें अबध्यमान 23 प्रकृतियाँ हैं अथवा उद्योत सहित 24 प्रकृतियाँ हैं। सातवीं पृथ्वी में बन्धयोग्य 96 प्रकृतियों में से २३ अथवा २४ प्रकृतियाँ कम करके 7३ अथवा 7२ प्रकृतियाँ बांधी जाती हैं क्योंकि उद्योत का बंध अथवा अबंध दोनों संभव हैं ।

www.JainKosh.org

चार गतियों में संभवनीय प्रकृतिबंधापसरण स्थान

स्थान क्रं.	बंधापसरण होने वाली प्रकृतियों के नाम	मनुष्य, तिर्यंच	भवनत्रिक, सौधर्म-2	३ से १२ स्वर्ग, १ से ६ नरक	१३ स्वर्ग से नव ग्रैवेयक	सातवां नरक
१	नरक आयु	१	×	×	×	×
२	तिर्यंच आयु	१	१	१	×	१
३	मनुष्यायु	१	१	१	१	×
४	देवायु	१	×	×	×	×
५	नरकद्विक १) नरकगति २) नरकगत्यानुपूर्वी	२	×	×	×	×
६	सूक्ष्मत्रिक- सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण	३	×	×	×	×

चार गतियों में संभवनीय प्रकृतिबंधापसरण स्थान

स्थान क्रं.	बंधापसरण होने वाली प्रकृतियों के नाम	मनुष्य, तिर्यंच	भवनत्रिक, सौधर्म-2	३ से १२ स्वर्ग, १ से ६ नरक	१३ स्वर्ग से नव ग्रैवेयक	सातवां नरक
७	सूक्ष्म, अपर्याप्तक, प्रत्येक	–	×	×	×	×
८	बादर, अपर्याप्तक, साधारण	–	×	×	×	×
९	बादर, अपर्याप्तक, प्रत्येक	–	×	×	×	×
१०	द्वीन्द्रिय जाति-अपर्याप्तक	–	×	×	×	×
११	त्रीन्द्रियजाति-अपर्याप्तक	–	×	×	×	×
१२	चतुरीन्द्रियजाति-अपर्याप्तक	–	×	×	×	×

चार गतियों में संभवनीय प्रकृतिबंधापसरण स्थान

स्थान क्रं.	बंधापसरण होने वाली प्रकृतियों के नाम	मनुष्य, तिर्यंच	भवनत्रिक, सौधर्म-2	३ से १२ स्वर्ग, १ से ६ नरक	१३ स्वर्ग से नव ग्रैवेयक	सातवां नरक
१३	असंज्ञि पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक	–	×	×	×	×
१४	संज्ञि पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक	–	×	×	×	×
१५	सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण	–	×	×	×	×
१६	सूक्ष्म-पर्याप्त-प्रत्येक	–	×	×	×	×
१७	बादर-पर्याप्त-साधारण	–	×	×	×	×
१८	एकेन्द्रिय-पर्याप्तक-प्रत्येक-आतप-स्थावर-बादर	३	३	×	×	×
१९	द्वीन्द्रिय जाति-पर्याप्त	१	×	×	×	×

चार गतियों में संभवनीय प्रकृतिबंधापसरण स्थान

स्थान क्रं.	बंधापसरण होने वाली प्रकृतियों के नाम	मनुष्य, तिर्यंच	भवनत्रिक, सौधर्म-2	३ से १२ स्वर्ग, १ से ६ नरक	१३ स्वर्ग से नव ग्रैवेयक	सातवां नरक
२०	त्रीन्द्रिय जाति-पर्याप्त	१	×	×	×	×
२१	चतुन्द्रिय जाति-पर्याप्त	१	×	×	×	×
२२	असंज्ञि पंचेन्द्रिय जाति-पर्याप्त	–	×	×	×	×
२३	१) तिर्यंचगति २) तिर्यंचगत्यानुपूर्वी ३) उद्योत	३	३	३	×	×
२४	नीच गोत्र	१	१	१	१	×
२५	१) अप्रशस्त विहायोगति २) दुर्भग ३) दुःस्वर ४) अनादेय	४	४	४	४	४

स्थान क्रं.	बंधापसरण होने वाली प्रकृतियों के नाम	मनुष्य, तिर्यंच	भवनत्रिक, सौधर्म-2	३ से १२ स्वर्ग, १ से ६ नरक	१३ स्वर्ग से नव ग्रैवेयक	सातवां नरक
२६	१) हुंडक संस्थान २) असंप्राप्तसृपाटिका संहनन	२	२	२	२	२
२७	नपुंसकवेद	१	१	१	१	१
२८	१) वामन संस्थान २) कीलित संहनन	२	२	२	२	२
२९	१) कुब्ज संस्थान २) अर्धनाराच संहनन	२	२	२	२	२
३०	स्त्रीवेद	१	१	१	१	१
३१	१) स्वाति संस्थान २) नाराच संहनन	२	२	२	२	२
३२	१) न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान २) वज्रनाराच संहनन	२	२	२	२	२

www.jainkosh.org

स्थान क्रं.	बंधापसरण होने वाली प्रकृतियों के नाम	मनुष्य, तिर्यंच	भवनत्रिक, सौधर्म-2	३ से १२ स्वर्ग, १ से ६ नरक	१३ स्वर्ग से नव ग्रैवेयक	सातवां नरक
३३	१) मनुष्यगति २) मनुष्यगत्यानुपूर्वी ३) औदारिक शरीर ४) औदारिक शरीरांगोपांग ५) वज्रर्षभनाराच संहनन	५	×	×	×	×
३४	१) अस्थिर २) अशुभ ३) अयश ४) अरति ५) शोक ६) असाता	६	६	६	६	६
	प्रकृति बंधापसरण के कुल स्थान	३४	१४	१३	११	१०
	कुल व्युछिन्न प्रकृतियां	४६	३१	२८	२४	२४/२३
	अवशेष बंध-योग्य प्रकृतियां	७१	७२	७२	७२	७२/७३
	अबन्ध प्रकृतियां	-	१४	१७	२१	२१
	कुल बंध-योग्य प्रकृतियां	११७	१०३	१००	९६	९६

शंका - तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र इन प्रकृतियों की सातवें नरक में बंध-व्युच्छित्ति क्यों नहीं है?

समाधान - सातवें नरक में उस भव संबंधी संक्लेश परिणाम होने से

शेष गतियों के योग्य परिणाम नहीं होने से

वहाँ के मिथ्यादृष्टि नारकी के तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योत व नीच गोत्र को छोड़कर

सदाकाल उसकी प्रतिपक्ष स्वरूप प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है ।

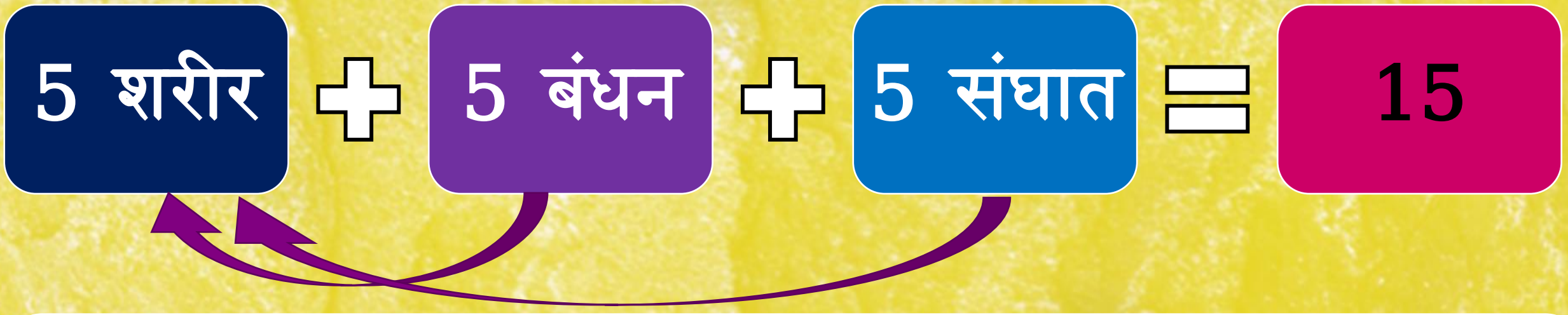

अभेद अपेक्षा में (15 – 5 शरीर =) 10 प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं

क्योंकि बंधन और संघात कर्म शरीर नामकर्म के अविनाभावी हैं ।

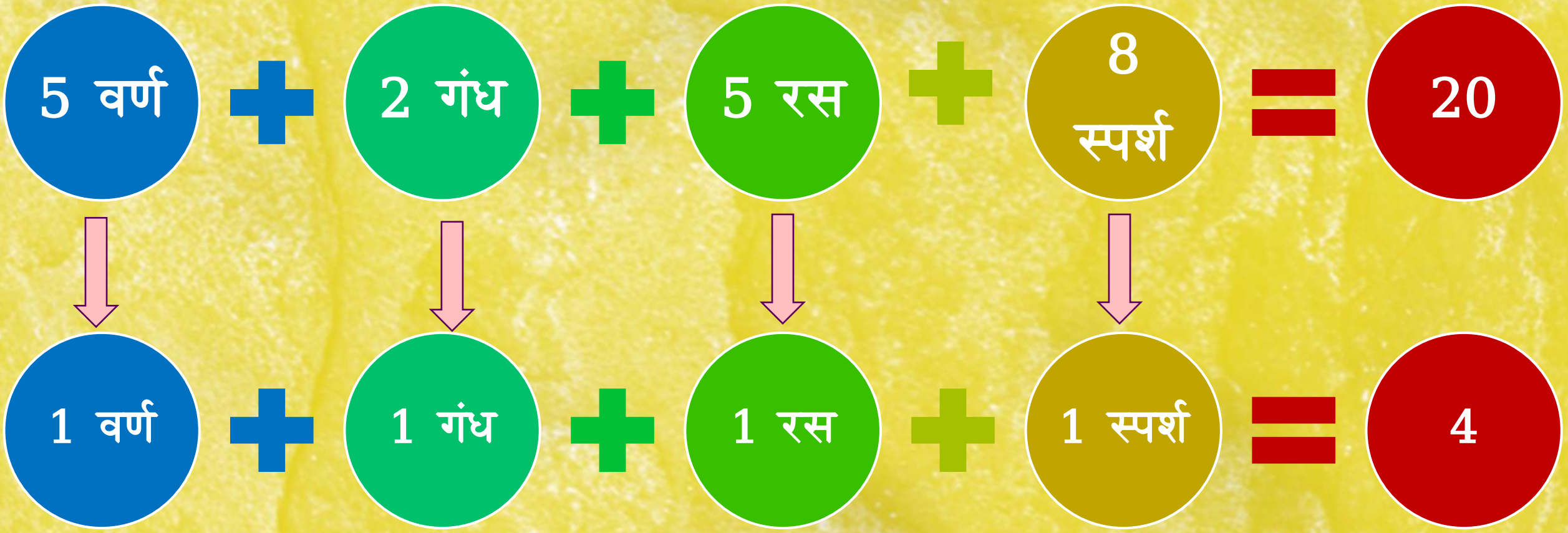

अभेद अपेक्षा में (20 – 4 =) 16 प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं

क्योंकि अभेद से ग्रहण किया है ।

www.JainKosh.org

विशेष

ऐसी अभेद विवक्षा बन्ध और उदयरूप प्रकृतियों में ही की है, सत्त्व में नहीं ।

मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय बन्ध-योग्य नहीं हैं, अतः मोहनीय में बंध-योग्य में से दो प्रकृतियाँ घटायी हैं ।

www.jainkosh.org

घादिति सादं मिच्छं, कसायपुंहस्सरदि भयस्स दुगं ।
अपमत्तडवीसुच्चं, बंधंति विसुद्धणरतिरिया ॥20॥

- अन्वयार्थः (विसुद्धणरतिरिया) विशुद्ध मनुष्य व तिर्यंच (प्रायोग्यलब्धि में स्थित मिथ्यादृष्टि) (घादिति) ज्ञानावरणादि तीन घातिया कर्म, (सादं) साता वेदनीय, (मिच्छं) मिथ्यात्व (कसायपुंहस्सरदि) कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति (भयस्स दुगं) भयद्विक (भय, जुगुप्सा) (अपमत्तडवीसुच्चं) अप्रमत्त गुणस्थान में बंधयोग्य 28 नामकर्म की प्रकृतियाँ और उच्च गोत्र – इन प्रकृतियों को (बंधंति) बांधता है ।

www.JainKosh.org

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच के बंध-योग्य प्रकृतियाँ (71)

ज्ञानावरण की पाँच	दर्शनावरण की नौ	अंतराय की पाँच	साता वेदनीय
मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	अप्रमत्त की अट्ठाईस	उच्च गोत्र	

www.JainKosh.org

देवतसवण्णअगुरुचउक्कं समचउरतेजकम्मइयं । सग्गमणं पंचिंदी थिरादिछण्णिमिणमडवीसं ॥21॥

• अन्वयार्थः- (देवतसवण्णअगुरुचउक्क) देवचतुष्क, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, (समचउरतेजकम्मइयं) समचतुरस्रसंस्थान, तैजस व कार्मण शरीर (सग्गमणं) प्रशस्त विहायोगति, (पंचिंदी) पंचेन्द्रिय (थिरादिण्णिमिणं) स्थिरादि 6 प्रकृतियाँ और निर्माण – ये (अडवीसं) अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं ।

www.JainKosh.org

अप्रमत्त संबंधी 28 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

देव-चतुष्क	• देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग
त्रस-चतुष्क	• त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक
अगुरुलघु-चतुष्क	• अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास
वर्ण-चतुष्क	• वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श
स्थिरादि षट्क	• स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश:कीर्ति

समचतुरस्र संस्थान, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति और निर्माण

www.jainkosh.org

तं सुरचउक्कहीणं णरचउवज्जजुद पयडिपरिमाणं ।
सुरछप्पुढवीमिच्छा सिद्धोसरणा हु बंधंति ॥22॥

• अन्वयार्थः- (सिद्धोसरणा सुरछप्पुढवीमिच्छा) बन्धापसरण पूर्ण किये हुए देव और प्रथमादि छह पृथ्वियों के नारकी मिथ्यादृष्टि (तं) उनमें से (पूर्वोक्त 71 प्रकृतियों में से) (सुरचउक्कहीणं) देवचतुष्क कम करके (णरचउवज्जुद) मनुष्यचतुष्क और वज्रवृषभनाराच संहनन से युक्त (पयडिपरिमाणं) 72 प्रकृतियों का (हु बंधति) बंध करते हैं ॥22॥

www.JainKosh.org

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि देव और नारकी के द्वारा बध्यमान प्रकृतियाँ

तिर्यंच व मनुष्य में बंध-योग्य 71 प्रकृतियाँ

– देव-चतुष्क

+ मनुष्य-चतुष्क व वज्रवृषभनाराच संहनन

= 72 प्रकृतियाँ

osh.org

तं णरदुगुच्चहीणं तिरियदु णीचजुद पयडिपरिमाणं ।
उज्जोवेण जुदं वा सत्तमखिदिगा हु बंधति ॥23॥

- अन्वयार्थः (तं) उनमें से (पूर्वोक्त 72 प्रकृतियों में से) (णरदुगुच्चहीणं) मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र कम करके (तिरियदु णीचजुद) तिर्यंचद्विक व नीचगोत्र मिलाने पर (पयडिपरिमाणं) 72 प्रकृतियाँ होती हैं । वे (वा) अथवा (उज्जोवेण जुदं) उद्योत प्रकृति से युक्त 73 प्रकृतियाँ (सत्तमखिदिगा) सातवीं पृथ्वी के नारकी मिथ्यादृष्टि (हु बंधंति) बांधते हैं ।

www.JainKosh.org

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख सातवीं पृथ्वी के मिथ्यादृष्टि के द्वारा बंधयोग्य प्रकृतियाँ

पूर्वोक्त देव संबंधित 72 प्रकृतियाँ

– मनुष्य-द्विक और उच्चगोत्र

+ तिर्यंच-द्विक और नीचगोत्र

= 72 प्रकृतियाँ

72 + उद्योत = 73 प्रकृतियाँ

चूँकि उद्योत वैकल्पिक प्रकृति है अतः इसका बंध होने पर 73 प्रकृतिक बंध होता है । बंध नहीं होने पर 72 प्रकृतियों का बंध होता है ।

hKosh.org

- Reference : श्री लब्धिसार टीकासहित अनुवाद – ब्र. सुजाता रोटे, बाहुबली

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889

- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं प्लेलिस्ट चुनें ।